इकाई 3 'तब तुम्हारी नि ठा क्या होती?' और 'चुनौती' : समता dh सृजनात्मक पहल

bdkbZ dh : ijs[kk

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 रचनाकार : व्यक्तित्व एवं रचनाबोध

3.2.1 कंवल भारती : संवेदना और दृ-टि

3.2.2 सी.बी. भारती : अनुभूति व विचार

3.3 'तब तुम्हारी नि-ठा क्या होती?' आंबेडकर दर्शन की प्रतिबद्ध कविता

3.3.1 चातुर्वर्ण्य व्यवस्था पर प्रश्नचिह्न

3.3.2 पुरोहिती संस्कृति पर प्रहार

3.4 चुनौती : दासता से मुक्ति की घो-णा

3.4.1 प्रतिबंधित अर्थव्यवस्था को चुनौती

3.4.2 परिवर्तन के मुखरित स्वर

3.5 श्रे-ठता का दंभ तोड़ती कविता

3.6 दलित सौंदर्यबोध की जीवनवादी दृ-टि

3.7 सारांश

3.0 उद्देश्य

यह 'हिन्दी दलित साहित्य का विकास' पाठय्क्रम 19 के प्रथम खंड 'हिन्दी की दलित कविता' की चौथी इकाई है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप

- दलित कविता की संवेदनात्मक दृ-टि से परिचित हो सकेंगे;
- दलित कविता की प्रमुख प्रवृत्ति प्रश्नाकुलता से रू-ब-रू हो सकेंगे और यह जान सकेंगे कि दलित साहित्य सत्ता के वर्चस्व को क्यों नकारता है तथा प्रश्नवाचकता की इसमें क्या भूमिका है;
- दलित आलोचना की समाजशास्त्रीय अध्ययन दृ-टि से परिचित हो सकेंगे;
- कंवल भारती और सी.बी. भारती की समतावादी दृ-टि से परिचित हो सकेंगे;
- दलित आंदोलन के लिए इतिहास के महत्व को पहचान सकेंगे;
- स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व के लक्ष्य हासिल करने में दलित साहित्य के महत्व को विश्लेि-त कर सकेंगे; और
- आभिजात्य सौंदर्यवादी साहित्यिक मानदण्डों और दलित साहित्य के सौंदर्य शास्त्रीय और शैलीगत विशे-ताओं का विश्ले-ण कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

कविता भा-िक कलाओं में पहली ऐसी कला है, जिसमें मनु-य ने अपने मनोभावों को सशक्त तरीके से अभिव्यक्त किया। अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम होने के नाते सत्ता व सत्तावादियों ने इसका भरपूर इस्तेमाल अपने को बचाये-बनाये रखने के लिए किया। ठीक इसी तरह सत्तावादियों के अत्याचार-अनाचार के विरुद्ध इस कला को अपने संघर्-ा के हथियार की तरह शोि-तों ने भी विकसित किया। कविताएं दुनिया भर में मुक्तिकामी आंदोलनों की सहयात्री रही हैं। दलित साहित्य में भी कविताओं की यहीं संघर्-ाकारी भूमिका है। दलित कवि अपने जीवन के तप्त अनुभव और मुक्तिकामी दृ-टि के साथ उपस्थित हैं तथा पुरोहिती जड़ता व शो-ाक व्यवस्था के विरुद्ध संघर्-ारत है। दलित साहित्य में कवियों और लेखकों की भूमिका मात्र साहित्यकारों की नहीं बल्कि मुक्तियोद्धाओं की है। ओमप्रकाश वाल्मीकी कहते हैं-

ß*मेरी पीढ़ी ने अपने सीने पर*
खोद लिया है संघर्-ा
जहाँ आँसुओं का सैलाब नहीं
विद्रोह की चिंगारी फूटेगी
जलती झोपड़ी से उठते धुंए में
तप्ती मुट्ठियाँ तुम्हारे तहख़ानों में
*नया इतिहास रचेंगी।।**

(सदियों का संताप पृ. 15)

ß दलित कविताएं सत्ताव्यवस्था और उनकी विचारधारा पर धारदार प्रश्न व तर्क करती हैंÞ ये कविताएँ आशावाद से भरपूर हैं। ये कविताएं नया इतिहास रचने की बात करती हैं क्योंकि पूर्व का इतिहास सत्ता के वैचारिक आग्रहों की निर्मिति है। यहाँ कविताएँ बुद्ध , फुले और आंबेडकर के समतावादी विचार को आत्मसात करके सामाजिक वि-ामता को न-ट करने के प्रति संकल्प करती हैं। अनुभवजन्य 'गुलामगिरी' के लेखक, दलित मुक्ति के चिंतक ज्योतिराव फुले कहते हैं 'राख ही जानती है जलने का दर्द।' जिसकी यथार्थ अभिव्यक्ति कवि नारायण सुर्वे की प्रस्तुत कविता में देख सकते हैंः

जो कभी
भूखा न रहा
वह क्या जाने
ऐंठती आंतों का दर्द।

(दलित साहित्य, वार्-िकी 2004 पृ. 189)

दलित साहित्य उन प्रश्नों को उठा रहा है जिन्हें पूर्व का साहित्य बहुत सोच समझ कर हाशिये पर ठेलता आया है। जाति का सवाल एक सवाल रहा है जिसकी चर्चा साहित्य ज्ञान मीमांसा में एकदम शामिल नहीं रही है क्योंकि यह सवाल ब्राह्मणवादी सत्ता व्यवस्था के अन्यायकारी चरित्र को उघाड़ कर रख देता है। लोकतंत्र और आजादी मिलने के बाद भी जब अछूत आज भी अन्याय सह रहा है तब यह किस तरह का लोकतंत्र है जो छह दशकों से ज्यादा समय होने के बाद भी दलित को न्याय नहीं दे पाया।

'अछूत-रा-ट्रीय धारा से उपेक्षित, साहित्य से तिरस्कृत
दफतर से अनिश्चित, समाज से असंतुलित गांव से असुरक्षित,
विश्वविद्यालयों में अनुपस्थित, राजनीति में बिकाऊ, कस्बे में उबाऊ,

समाचार पत्रों से विलुप्त, शहर में असंतु-ट,
हाँ ये अम्बेडकर की मूर्ति थामे, जमीन की तलाश में
लगभग आधी सदी से खड़ा है।
(आंबेडकरीय कविता-5, प्रेमशंकर)

ये कविताएं वर्तमान के अत्याचारों व शो-ण की घटनाओं का प्रखर स्वर में विरोध करती हैं। दलित कविताएं समझौतापरक विरोध नहीं करती बल्कि निचले पायदान के लोगों के जीवन को बदलने के लिए स्वयं को प्रतिबद्ध मानती हैं।

इस गाँव सिवान के बाहर की सूखी रौंदी हुई जिन्दगी। कभी नहीं बनी वि-नय तुम्हारी कविता का। उसके लहूलुहान कदमों की और जलती हुई इज्जत को। छू नहीं सका शब्द तुम्हारी कविता का।

(अनु. प्रो. विमल थोरात)

दलित कविताओं ने अछूते सौंदर्य का साहित्य रचा है। इन कविताओं में गुले-गुलजार, कली, फूल, चमन, बहार नायक नायिकाओं के प्रेम प्रसंगों की चर्चा नहीं बल्कि खुरपा, रांपी, चाक, कुदाल, फावड़ा, करनी, बसुला, रूखानी, झाड़ू, टोकरी, श्रम का सौंदर्य, मुक्ति के संघर्-ा का हर्-ा, सदियों का संताप, प्रश्नाकुलता है। चुनौती पूर्ण अनूठी भा-ा, अछूते बिम्ब, प्रतीक व मिथकों की निर्मिति द्वारा दलित जीवन, परिवेश और अस्वस्थ मन को अभिव्यक्त करती है। इन कविताओं का वैचारिक आधार वर्णाश्रम विरोधी बौद्ध साहित्य, नाथ, सिद्ध, संत काव्य आंदोलन तथा फुले, पेरियार व डॉ. आंबेडकर का सामाजिक आर्थिक क्रांति का दर्शन है। कंवल भारती और सी. बी. भारती दलित साहित्य के प्रतिनिधि रचनाकार हैं इनके साहित्य ने दलित साहित्य की वैचारिकता और दलित चेतना बोध को विस्तारित किया है। इनकी कविताओं के पाठालोकन से आपको दलित काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति 'प्रश्नाकुलता' और 'संवेदना' को जानने समझने व सोचने का मौका मिलेगा। आइये भारतीय समाज व्यवस्था पर प्रहार करती इन 'प्रश्नाकुल कविताओं' के बारे में जाने!

साहित्य सृजन के उद्देश्यों में मुख्य रूप से दो धाराएं संपूर्ण विश्वस्तर पर दिखाई देती हैं। इसमें पहली धारा सत्ता व्यवस्था के समर्थन की रही है तथा दूसरी धारा शो-ण, उत्पीड़न, जड़ता व सत्ता विरोधी की रही है। प्रश्नाकुलता विरोध और विद्रोह दूसरी धारा के साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं। स्वतंत्रता मनु-य की प्रमुख प्राथमिकता है और इन्हीं आकांक्षाओं के लिए वह कला के विभिन्न माध्यमों के द्वारा अभिव्यक्त होती है। उसके भीतर जिज्ञासा होती है, यही प्रश्नाकुल प्रवृत्ति समाज के विकास की मूल शर्त है। यह प्रवृत्ति अगर किसी समाज में नहीं है तो कोई भी समाज आगे नहीं बढ़ सकता।

वह जड़ता का शिकार हो जाता है, ब्राह्मणवादी जड़ता ने जनमानस में उमड़ते-घुमड़ते प्रश्नों को धर्म की धाक बताकर चुप रहने को बाध्य किया विशे-ाकर शूद्र और स्त्री अपनी स्थिति के प्रति कहीं सचेत न हो जाए और अधिकारों की माँग करने लगें। इसके लिए उन पर हजारों प्रकार के बंधन लादकर, इनकी पराधीनता को भाग्यवाद से जोड़ दिया।

3.2 रचनाकार : व्यक्तित्व एवं रचनाबोध

दलित साहित्य के यशस्वी पत्रकार, कवि आलोचक कंवल भारती का जन्म 4 फरवरी 1953 को रामपुर उत्तर प्रदेश में हुआ। इन्होंने एम.ए.तक शिक्षा प्राप्त की है। तदन्तर, समाज कल्याण विभाग में कार्यरत हैं। केवल भारती बहुमुखी प्रतिभा के रचनाकार हैं। अनेक विधाओं में इनकी रचनाएँ मिलती हैं। वैचारिकी के अन्तर्गत उनकी निम्नलिखित

रचनाएँ आती हैं, ^ईश्वर, ब्रह्म आत्मा*] ^डॉ. आंबेडकर बौद्ध क्यों बने?*] ^कांशीराम के दो चेहरे*, ^डॉ. आंबेडकर : पुनर्मूल्यांकन*, ^लोकतंत्र में भागीदारी के सवाल*, ^सन्त रैदास : एक विश्ले-ण*, ^दलित विमर्श की भूमिका*, ^मनुस्मृति - प्रतिक्रान्ति का धर्मशास्त्र*, ^डॉ. आंबेडकर को नकारे जाने की साजिश*, ^दलित धर्म की अवधारणा*, ^आंबेडकर चिंतन के तीन अध्याय*, ^दलित साहित्य की अवधारणा और हिन्दी साहित्य*, ^हिन्दी दलित साहित्य : इतिहास और मूल्यांकन*।

कंवल भारती ने कविताएँ भी लिखी हैं। ^तब तुम्हारी नि-ठा क्या होती?* उनका एकमात्र काव्य संग्रह है। कविताएँ चेतना, तथा वेदना की बुनावट हैं। उन्होंने अंग्रेजी से अनुवाद भी किया है और इस तरह हिन्दी दलित साहित्य को समृद्ध किया है। उन्होंने 'आंबेडकर की कविताएँ' शी-र्क से बाबासाहेब आंबेडकर की कविताओं का हिन्दी में अनुवाद किया है। ^अंधकार में ज्योति* अनागरिक धर्मपाल का जीवन चरित है, इसे भी अंग्रेजी से हिन्दी में अनुदित किया है। कंवल भारती का योगदान संपादन के क्षेत्र में भी रहा है। उन्होंने ^वाल्मीकि वाणी*, ^मूक भारत* और ^माझी जनता* नामक पत्रिकाओं का सम्पादन किया है। हिन्दी की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में उनके लेखन से बराबर अवगत हुआ जा सकता है। श्री कंवल भारती को 1996 में डॉ.आंबेडकर रा-ट्रीय पुरस्कार और 2001 में भीम रत्न अवार्ड से सम्मानित किया जा चुका है।

^कंवल भारती* और ^सी.बी. भारती* समकालीन दलित कविता के सशक्त हस्ताक्षर हैं। भारतीय समाज के सोपानीकृत श्रेणी विभाजन के कारण हजारों व-र्षों से हाशिए पर रहते आए वर्गों के प्रति अमानवीयता की हदें पार करने वाली शो-ाक संस्थाओं के विरोध में यह दृढ़ होकर संघर्षरत है। इस विद्रोहात्मक आंदोलन की सृजनात्मक अभिव्यक्ति में शामिल इन दो कवियों की दो सशक्त कविताओं की आलोचनात्मक विवेचना प्रस्तुत पाठ में आप पढ़ेंगे। आइए, इनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करें।

3.2.1 कंवल भारती : संवेदना और दृ टि

वैदिकी और ब्राह्मणवादी विचारधारा जिसने लगातार शो-ाण, उत्पीड़न, वाली व्यवस्था को मजबूती दी, का विरोध लगातार ऊचें स्वर में उसके मजबूत दौर से ही होने लगा था। विरोध की शुरुआत वेदों की अक्षुण्णता पर प्रश्न के साथ शुरू हुई। बौद्ध साहित्य, लोकायत परंपरा, सिद्धनाथ परंपरा और संत साहित्य ने पूर्व आधुनिक दौर में ऐसे प्रश्न उठाये जो दलित साहित्य की आधारभूमि है। जिज्ञासा व प्रश्नाकुलता ऐसी बातें है जिन्होंने मानव को मानव बनाया। दलित दर्शन के आधार बौद्ध दर्शन के प्रणेता बुद्ध ने ईश्वर, आत्मा, पूर्वजन्म और पुनर्जन्म सिद्धांन्त, भाग्यवाद शास्त्र-पुराण और वर्णाश्रम जैसी अतार्किक बातों को प्रश्नांकित किया जो शो-ाण के मूल कारक थे। बुद्धकाल से मध्यकाल तक समतावादी आंदोलन की निरंतर कोशिशें हुईं।

साहित्य मनु-य चेतना में संचित आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है, वह सामाजिक-आर्थिक समता के लिए संघ-ार्रत जनसमुदाय की जनभावनाओं के पक्षों को उजागर करता है। जनभावना का साहित्य मनु-य के मन में पनपती स्वतंत्र चेतना की तलाश में बड़ी भूमिका का निर्वाह करते हुए क्रांति की ओर बढ़ता एक पुरजोर कदम भी होता है।

3.2.2 सी.बी. भारती : अनुभूति व विचार

चिंतन प्रक्रिया के दौरान मनु-य की सबसे पहली मुठभेड़ विचारों से होती है। उसे सबसे पहले अपने और अपने विरोधी विचारों से टकराना पड़ता है। मनु-य चिंतन की यह

स्वाभाविक परन्तु अनिवार्य प्रक्रिया है जिससे उसे गुजरना ही पड़ता है। दलित चिंतन इसी प्रक्रिया से गुजरकर गत 14-15 व-र्ों में समतावादी व मानवतावादी दृष्टि निर्माण की लगातार कोशिश कर रहा है।

साहित्यकार सी.बी.भारती का दलित-साहित्यकारों में प्रमुख स्थान है। इनका जन्म 30 जून 1957 में कुतुबपुर, फैजाबाद, उत्तर प्रदेश में हुआ। उन्होंने एम.ए., पीएच.डी. तक शिक्षा प्राप्त की है। भारती का बचपन बेहद गरीबी में बीता है।

प्रतिभासम्पन्न सी.बी.भारती कवि, रचनाकर और निबंधकार हैं। उन्होंने लघु कथाएँ, व्यंग्य और बाल कथाएँ भी लिखी हैं। उनकी रचनाएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छपती रहती हैं। ^आक्रोश* इनका एक मात्र कविता संग्रह है, जिसमें दलितों के जीवन के विभिन्न पक्षों पर संवेदनात्मक दृ-टिकोण से विचार किया है। इसमें दलितों का आक्रोश व्यक्त हुआ है।

सी.बी.भारती को अनेक पुरस्कार और सम्मान से नवाजा गया है। ^चुनौती* सी.बी.भारती की महत्वपूर्ण कविता है। कवि दलितों के प्रति सर्वणों के प्रतिबन्धित रुख को चुनौती देता है। वह कहता है कि अपना मकड़जाल हमपर बहुत फेंक चुके, लेकिन अब तुम्हारा मकड़जाल, हम पर नहीं चलेगा। अब समय आ गया है जब हम हर शर्तो को जीतेंगे और तुम्हारा दर्प तोड़ेंगे। इसलिए परिवर्तन के रुख को समझो, उसे पहचानो कविता पाठक को प्रेरित करती है और हौसले को बढ़ाती है।

3.3 'तब तुम्हारी नि ठा क्या होती?' आंबेडकर दर्शन की प्रतिबद्ध कविता

तब तुम्हारी नि ठा क्या होती?
यदि वेदों में लिखा होता
ब्राह्मण ब्रह्मा के पैर से हुए हैं पैदा।
उन्हें उपनयन का अधिकार नहीं।
तब, तुम्हारी नि-ठा क्या होती?

यदि धर्मसूत्रों में लिखा होता
तुम ब्राह्मणों, ठाकुरों और वैश्यों के लिए
विद्या, वेद-पाठ और यज्ञ निि-द्ध हैं।
यदि तुम सुन लो वेद का एक भी शब्द
तो कानों में डाल दिया जाय पिघला शीशा।
यदि वेद-विद्या पढ़ने की करो धृ-टता,
तो काट दी जाय तुम्हारी जिह्वा
यदि यज्ञ करने का करो दुस्साहस,
तो छीन ली जाय तुम्हारी धन-सम्पत्ति,
या, कत्ल कर दिया जाय तुम्हें उसी स्थान पर।
तब, तुम्हारी नि-ठा क्या होती?

यदि स्मृतियों का यह विधान लागू हो जाता
तुम ब्राह्मणों, ठाकुरों और वैश्यों पर
कि तुम नीच हो,
श्मशान-भूमिवत् हो,
तुम्हारे आवास हों गांवों के बाहर
तुम्हारे पेशे हों घृणित -
मरे जानवरों को उठाना,

मल-मूत्र साफ करना,
कपड़े धोना, बाल काटना,
हमारे खेतों-घरों में दास-कर्म करना।
तब, तुम्हारी नि-ठा क्या होती?

यदि विधान लागू हो जाता (तुम द्विजों पर)
कि तुम्हें धन-सम्पत्ति रखने का अधिकार नहीं।
तुम जिन्दा रहो हमारी जूठन पर,
हमारे दिये हुए पुराने वस्त्रों पर,
तुम्हें अधिकार न हो पढ़ने-लिखने का,
तुम्हारे बच्चे सेवक बने हमारे
पीढ़ी-दर-पीढ़ी
हम रहें तुम्हारे शासक।
तब, तुम्हारी नि-ठा क्या होती?

यदि यह विधान लागू हो जाता
कि तुम अस्पृश्य हो
तुम्हारी छाया भी अमंगल है,
हमारे शरीर, वायुमंडल और धरा के लिये।
इसलिए तुम्हें गले में लटका कर हांडी।
और कमर में बांधकर झाड़ू
सड़कों पर चलने की राजाज्ञा हो,
तुम्हारा वर्जित हो मन्दिरों में प्रवेश
सार्वजनिक कुओं, तालाबों से लेना पानी।
तब, तुम्हारी नि-ठा क्या होती?

यदि विधान लागू हो जाता कि
तुम्हारे जीवन का कोई मूल्य नहीं।
कोई भी कर सकता है तुम्हारा वध
ले सकता है, तुमसे बेगार
तुम्हारी स्त्री, बहिन और पुत्री के साथ,
कर सकता बलात्कार
जला सकता है घर-बार।
तब, तुम्हारी नि-ठा क्या होती?

यदि रामायण में राम
तपस्वी-धर्मनि-ठ ब्राह्मणों का करते कत्लेआम।
तुलसीदास मानस में लिखते
पूजिए सूद्र सील गुन हीना।
विप्र न गुन गन ग्यान प्रवीना।
तब, तुम्हारी नि-ठा क्या होती?

कविता में आए कठिन शब्दों के अर्थ

विधान - धर्माधारित
नियम - कानून
विप्र - ब्राह्मण

दलित-साहित्यकार कंवल भारती की चर्चित कविता, ^तब तुम्हारी नि-ठा क्या होती?* भारतीय हिंदू-समाज की उस धार्मिक नि-ठा पर अपनी तार्किक शैली द्वारा प्रश्न दागती है, जिसका उदगम-स्थल यहां के पौराणिक ग्रंथ रहे हैं। जिसमें भारत के दलित वर्ग पूर्व में जिन्हें अछूत कहा जाता था के प्रति कुछ ऐसे सिद्धांत प्रतिपादित किए गए हैं जो उसके लिए आधुनिक युग में भी काले-कानूनों की संज्ञा रखते हैं। यही सिद्धांत या नियम दलित वर्ग की सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक स्थिति को सदियों से प्रभावित करते रहे हैं। इन्हीं पौराणिक शास्त्रीय सिद्धांतों के प्रभाव से दलित को अब तक नारकीय स्थितियों से जूझना पड़ रहा है, क्योंकि इन शास्त्रीय सिद्धांतों से एक त्रासदी यह जुड़ी रही है कि यह धार्मिक नि-ठा में परिवर्तित हो कर धर्म ने इसे ईश्वरीय सिद्धांतों में परिवर्तित कर दिया है। और यह ईश्वरीय सिद्धांत या नियम भारतीय समाज में संस्कृति का स्वरूप बन कर हिंदू जनमानस में अपनी जड़ें मजबूत कर चुका है। कथित उच्च कहे गए वर्ग आंखें मूंद कर इनका अनुसरण करते जा रहे हैं।

प्रस्तुत कविता में इन्हीं सनातनी सिद्धांतों, जो दलित वर्ग के हितों को आहत करते हैं, के विरोध में ऐसे सशक्त प्रश्न उठाए गए हैं, जिन्होंने उसको सदियों तक प्रताड़ित किया है, कवि ने इन्हीं तर्काधारित प्रश्नों के द्वारा उसकी भारतीय समाज में नि-ठा के उस स्वरूप को दर्पण दिखाने का प्रयास किया है जिसने उसका जीवन नारकीय कर दिया था। यह कविता उस संपूर्ण दर्शन को चुनौती देने का साहस करती है जो समाज के दलित वर्ग को हाशिए पर धकेलने में प्रयासरत रहा है। इस समाज की संरचना में व्याप्त जाति-पांति की कड़ियों को सुदृढ़ करने वाले तत्वों को चुनौती देती हुई यह कविता भारतीय संस्कृति तथा इतिहास का भी मूल्याकंन करती है। कविता में अंतर्निहित तेवर दलित-चिंतन को नई ऊंचाइयाँ प्रदान करते हैं साथ ही साहित्य की कलात्मकता को नये आयाम भी प्रदान करते हैं। नि-ठा के नाम पर थोपे गए तमाम प्रतिबंधों की चर्चा इस कविता के रूप में ध्वनित करने का उचित अवसर प्राप्त हो गया है। ßधार्मिक ग्रंथों में दर्ज ईश्वरीय वाणी मानी जाने वाली धार्मिक सूक्तियों को इस कविता में प्रश्नावली के तेवर से तार-तार कर दिया है।*

यदि वेदों में लिखा होता
ब्राह्मण ब्रह्मा के पैर से हुए हैं पैदा।
उन्हें उपनयन का अधिकार नहीं।
तब, तुम्हारी नि-ठा क्या होती?

अपने इन्हीं प्रश्न वाचक-वाणी के प्रहार करते हुए कवि ने सर्वप्रथम वेदों की सत्ता को चुनौती देने का साहस किया है। उसने वेदों पर आधारित ब्रह्मा की इस उद्घो-णा पर अपना तर्क-बाण साधा है कि यदि चातुर्वर्ण्यव्यवस्था के एक मिथक के कारण समाज व्यवस्था में श्रे-ठत्व पाने वाला ब्राह्मण, ब्रह्मा के मुख से न पैदा होकर, ब्रह्मा के पांव से जन्मे होने की घो-णा की जाती तो, क्या तब भी जन्माधारित श्रे-ठता तय करने वाली इस व्यवस्था पर उसकी नि-ठा इसी प्रकार यथावत रहती? यहां ब्रह्मा और ब्राह्मण के परस्पर संबंधों पर शास्त्रीय चर्चा करना अत्यावश्यक होगा ताकि कविता की पृ-ठभूमि को भलीभाँति समझा जा सके।

3.3.1 चातुर्वण्य व्यवस्था पर प्रश्नचिह्न

भारत की चातुर्वर्ण्य प्रणाली के सिद्धांत की व्याख्या करने वाले पौराणिक ग्रंथ मनुस्मृति में यह घो-णा की गई है कि ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से तथा अन्य तीन वर्ण-क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र आदि क्रमशः ब्रह्मा के बाजुओं, जंघाओं तथा पांवों से उत्पन्न हुए हैं। इनमें ब्राह्मण सबसे अधिक श्रे-ठ है, क्योंकि वह ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुआ है तथा अन्य सभी वर्ण उससे निम्न है, इन सब वर्णों के कार्यों का जन्माधारित आवंटन भी कर दिया गया है, जिसकी चर्चा यहां अनावश्यक नहीं होगी। ब्राह्मण का कार्य मात्र पढ़ना-पढ़ाना,

यज्ञ करना, यज्ञ करवाना, दान देना तथा दान लेना आदि। दूसरे वर्ण, क्षत्रिय का कार्य निर्धारित किया हैः प्रजा की रक्षा करना, दान देना, दान लेना तथा यज्ञ आदि करने का अधिकार भी उसे है। तीसरे वर्ण, वैश्य का कार्य खेती करना, व्यापार करना आदि। इसी प्रकार सबसे निम्न वर्ण का कार्य भी बांट दिया गया है। शूद्र का काम है, बिना किसी निंदा-चुगली और प्रतिरोध के उल्लिखित तीनों वर्णों की सेवा करना।

इसी प्रकार कविता की आगे वाली पंक्तियों में उपनयन की चर्चा की गई है। आगे बढ़ने से पहले 'उपनयन* के बारे जानकारी स्प-ट कर लेना जरूरी होगा जिससे कविता के मर्म को आत्मसात करना सरल होगा। शूद्रों को छोड़ कर बाकी सब वर्णों का उपनयन संस्कार हो सकता था। आज भी यह संस्कार धार्मिक विधि के रूप में संपन्न करवाने के लिए यज्ञ का आयोजन किया जाता है तथा उस यज्ञ में इन तीनों वर्णों के ही व्यक्ति को जनेऊ धारण करवाया जाता है। इस क्रिया को 'यज्ञोपवीत* कहा जाता है। कवि इन पंक्तियों में इसी उपनयन की प्रक्रिया पर चर्चा करते हुए सवाल उठाता है कि क्या तब भी उसकी नि-ठा को आँच नहीं आती, यदि उससे भी उपनयन का अधिकार छीन लिया जाता? तब क्या उसकी नि-ठा इसी प्रकार अटल रहती?

इसके साथ जुड़ी अन्य पंक्तियों में कवि ने धर्म ग्रंथों में स्थापित उन तमाम मान्यताओं पर अपना लक्ष्य साधते हुए पूछा है यदि धर्म शास्त्रों में यह अंकित होता कि तुम ब्राह्मणों, ठाकुरों तथा वैश्यों के लिए वेदपाठ तथा यज्ञ आदि नि-िद्ध हैं तो तुम्हारी मनोदशा क्या होती? क्या तब भी तुम अपनी नि-ठा को बनाए रखने में सक्षम रहते? क्योंकि इन तीनों वर्णों को तो वेदपाठ करना, विद्या प्राप्त करना तथा यज्ञ आदि करना मना नहीं था। मनु द्वारा इन्हें विशे-ा अधिकार दिए गए लेकिन जहां तक चौथे वर्ण अर्थात शूद्रों का प्रश्न है, उनको यह संस्कार करने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं था। यदि वे इन आदेशों का पालन नहीं करते थे तो उनके लिए कठोर सज़ा का प्रावधान मौजूद था। कविता की आगे वाली पंक्तियों में इन्हीं स्थितियों का वर्णन है।

यदि धर्मसूत्रों में लिखा होता
तुम ब्राह्मणों, ठाकुरों और वैश्यों के लिये
विद्या, वेद-पाठ और यज्ञ नि-िद्ध हैं।
यदि तुम सुन लो वेद का एक भी शब्द
तो कानों में डाल दिया जाए पिघला शीसा।
यदि वेद-विद्या पढ़ने की करो धृ-टता,
तो काट दी जाय तुम्हारी जिह्वा
यदि यज्ञ करने का करो दुस्साहस,
तो छीन ली जाय तुम्हारी धन-सम्पत्ति,
या, कत्ल कर दिया जाय तुम्हें उसी स्थान पर।
तब, तुम्हारी नि-ठा क्या होती?

इन पंक्तियों में कहा गया है कि यदि तुम (अछूत, दलित) वेद का एक शब्द भी सुन लो, तो तुम्हारे कानों में पिघला हुआ शीसा डाल दिया जाएगा। इसी प्रकार यदि तुम वेदपाठ करने की धृ-टता करो तो तुम्हारी जिह्वा काट दी जाएगी। इसी प्रकार यदि तुम यज्ञ करने का दुस्साहस करो तो तुम्हारी धन संपत्ति छीन ली जाएगी। तुम्हारा उसी समय, उसी स्थान पर वध कर दिया जाएगा। इन प्रश्नों की बौछार करते हुए कवि द्विज वर्ग को पूछता है कि इन परिस्थितियों में दण्ड पाने के बाद भी क्या तुम्हारी नि-ठा इसी प्रकार कायम रहेगी? यहां ज्ञातव्य है कि धर्म सूत्रों के अनुसार यदि कोई शूद्र वेद का एक शब्द भी सुन ले तो उसे धर्म की अवज्ञा करने पर दण्ड देने का कठोर आदेश था। मनुस्मृति के सूत्र (12.4) में कठोरता से यह घो-ित किया गया है। इसमें आगे कहा गया है कि यदि शूद्र वेदों पर अपना प्रभुत्व कायम करना चाहता है, तो उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिए जाएं।

धर्मोपदेशं दर्पेण विप्राणामस्य कुर्वतः।
तप्रमासे चयेतैलं वक्त्रे श्रोत्रे च पार्थिवः।।

राम द्वारा शंबूक का वध मनुस्मृति के इसी धर्मसूत्रों में दिए गए इसी विधि-विधान के पालन हेतु किया गया था। किसी ब्राह्मण पुत्र की मृत्यु के लिए शंबूक को दोष दिया गया था। ज्ञान प्राप्ति हेतु अध्ययनरत शंबूक का यह दुःस्साहस ब्राह्मणवाद का सीधे-सीधे उल्लंघन था अतः श्रेष्ठी ब्राह्मण वर्ग ने अयोध्या के नरेश राम को राजा के कर्तव्य पालन का आदेश दिया। प्रजारक्षक राम ने धर्म विरोधी आचरण के लिए शंबूक का इसीलिए शिरोच्छेद कर दिया था।

मनुस्मृति ने वेदपाठ न करने के दिए आदेशों पर डॉ. आंबेडकर की टिप्पणी महत्वपूर्ण है ‘‘ऐसा कहा जा सकता है कि प्राचीन संसार ने साधारण लोगों को शिक्षा देने की अपनी जिम्मेदारी न निभाने का अपराध किया है, परन्तु संसार में ऐसा कोई समाज नहीं है, जिसने साधारण जनता को धर्म-ग्रंथों का अध्ययन करने की मनाही की हो अथवा साधारण जनता द्वारा शिक्षा प्राप्त करने पर प्रतिबंध लगाने का अपराध किया है। किसी भी समाज ने ऐसी चे-टा नहीं की कि साधारण मनु-यों द्वारा ज्ञान प्राप्त करने के प्रयासों को दंड देने योग्य अपराध घो-ित किया जाए। केवल मनु ही एक ऐसा दैवी कानून बनाने वाला व्यक्ति है, जिसने साधारण व्यक्ति के ज्ञान प्राप्त करने के अधिकार को नकारा है।’’

(भीमराव आंबेडकर - बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर, संपूर्ण वाडमय, पृ. 272)

डॉ. आंबेडकर की यह टिप्पणी धर्म ग्रंथ, ईश्वर और धर्म रक्षा के आंडबर द्वारा रचाए गए ब्राह्मणवाद के -ाडयन्त्र के पीछे छिपी अमानवीय सोच की पोल खोल देती है।

कविता में वर्णित अन्य पक्तियों के अनुसार शूद्र यदि यज्ञ करने का प्रयत्न करे तो संपत्ति छीन लेने का आदेश भी दिया गया है क्योंकि शूद्र को धन संचय करने की धर्म शास्त्रों द्वारा मनाही की गई है। यदि शूद्र इन आदेशों की अवहेलना करते हुए धन संचय करने का साहस जुटाता है तो उसके लिए कठोर दण्ड मनोनीत किए गए हैं। मनुस्मृति के अनुसार शूद्र द्वारा धन संचय करने से ब्राह्मण को दुःख पहुंचता है।

शक्तेनापि हि शूद्रेण न कार्यो धनसंचयः
शूद्रो हि धनमासाद्य ब्राह्मणानेन बधेत।।

(मनुस्मृति, 10-129)

कवि ब्राह्मणवाद के इस अन्यायपूर्ण आदेश को नकारते हुए प्रश्न करता है कि क्या तुम्हारी नि-ठा तब भी वैसी ही बनी रहती जब तुम्हारी भी संपत्ति छीनने का आदेश धर्म द्वारा दिया गया होता और उसके पश्चात् तुम्हारे वध करने का आदेश दिया जाता।

स्मृतियों में, शूद्रों के लिए यह आदेश दर्ज किए गए हैं कि ब्राह्मणों, ठाकुरों और वैश्यों के निवास स्थानों से दूर गांव की दक्षिण दिशा में इनका निवास स्थान होना चाहिए। इनके व्यवसाय भी घृणित होने चाहिए। इनको मुर्दा जानवर उठाने शव दहन व दफन करने जैसे मलीन कार्य करने के आदेश, धर्म ग्रंथों में दिए गये हैं। इसके अतिरिक्त मल-मूत्र साफ करना, कपड़े धोना, बाल काटना, द्विजों के घरों में दास-कर्म करना आदि इनके व्यवसाय में शामिल हैं। कवि द्विजों की नि-ठा को चुनौती देते हुए पूछता है कि यदि उल्लिखित आदेश ब्राह्मणों, ठाकुरों तथा वैश्यों के लिए लिखे होते तो क्या धर्म और धर्म ग्रंथों में, चातुर्वर्ण्य में और बहि-कृत किए जाने जैसे धर्मादेशों में उनकी नि-ठा, पहले जैसी बनी रहती?

यदि यह विधान लागू हो जाता
कि तुम अस्पृश्य हो

तुम्हारी छाया भी अमंगल है,
हमारे शरीर, वायुमंडल और धरा के लिये।
इसलिये तुम्हें गले में लटका कर हांडी।
और कमर में बांधकर झाड़ू
सड़कों पर चलने की राजाज्ञा हो,
तुम्हारा वर्जित हो मन्दिरों में प्रवेश
सार्वजनिक कुओं, तालाबों से लेना पानी।
तब, तुम्हारी निष्ठा क्या होती?

क्योंकि शूद्र को विद्या पाने का अधिकार नहीं, उसको संपत्ति रखने का अधिकार नहीं, इसलिए उसकी संतान भी द्विज की सेवक कहलाने पर बाध्य हैं। लेकिन, ठीक इसके विपरीत शास्त्रों का ऐसा विधान है कि शासक द्विज ही हो सकता है। शास्त्रों के अनुसार कोई भी शूद्र शासक अथवा स्वामी बनने का अधिकारी नहीं हो सकता। उसे द्विजों की जूठन पर जिंदा रहना पड़ेगा। कवि इन शास्त्रों के विधानों की नि-ठा पर प्रश्नों की बौछार करते हुए तर्क प्रस्तुत करता है कि यदि द्विजों को इन्हीं परिस्थितियों के अधीन जूठन खाने पर बाध्य होना पड़ता, उनकी दासता झेलनी पड़ती, धन-संपत्ति विहीन विपन्नता का जीवन जीना पड़ता, तो क्या उनकी नि-ठा तब भी इसी प्रकार टिकी रहती?

यदि यह विधान लागू हो जाता (तुम द्विजों पर)
कि तुम्हें धन–सम्पत्ति रखने का अधिकार नहीं।
तुम जिन्दा रहो हमारी जूठन पर,
हमारे दिये हुए पुराने वस्त्रों पर,
तुम्हें अधिकार न हो पढ़ने–लिखने का,
तुम्हारे बच्चे सेवक बने हमारे
पीढ़ी–दर–पीढ़ी
हम रहें तुम्हारे शासक।
तब, तुम्हारी निष्ठा क्या होती?

इसी संदर्भ में अपने प्रश्नों की बौछार को और तीक्ष्ण करते हुए कवि शास्त्रों के विधानों पर प्रश्न चिहन लगाते हुए कहता है कि यदि उसकी भी परछाई अमंगल होती तो वह कैसा अनुभव करता, क्योंकि शास्त्रों के मुताबिक शूद्र अपवित्र है, इसलिए यह विधान तय किया गया है कि यदि वह गलियों-बाजारों में कभी निकले तो अपने गले में एक हांडी लटकाकर निकले। यहां यह स्पष्ट करना आवश्यक होगा। शूद्र के गले में हांडी बांधने के आदेश का तात्पर्य यह था कि वह उस गले में ही थूके, क्योंकि द्विज शूद्र की थूक से अपवित्र नहीं होना चाहता। इसके अतिरिक्त शूद्र अपनी कमर में झाड़ू बांध कर निकले, ताकि उसके पद चिन्ह् चलते समय उसे झाड़ू से स्वतः मिटाते जाएं, क्योंकि इन पर पाँव पड़ने से भी द्विज अपवित्र हो सकता है।

शूद्रों को किसी मंदिर में प्रवेश करने का कोई अधिकार नहीं था। यह आदेश अब भी भारत के कई मंदिरों में कठोरता से कार्यान्वित हैं। आज भी यदि कोई दलित किसी मंदिर का द्वार लांघने का प्रयास करता है तो एक दुर्घटना मानी जाती है। नियमों के उल्लंघन पर प्राण दंड जैसी सजा पंचायत या नागरिक समूहों द्वारा तय की जाती है। हाल ही के वर्षों में राजस्थान के नाथ द्वारा मंदिर में (दिसंबर-2003) दलित समाजसेवियों को मंदिर प्रवेश करने से रोका गया। जबकि संविधान के अनुसार सभी भारतीयों को मंदिर प्रवेश का अधिकार है। फिर भी इन्हें रोककर मानव अधिकारों का हनन किया गया। पुलिस केवल तमाशा बनकर देखती रही और दलितों के समूह को अपनी पहचान छुपाकर मंदिर प्रवेश करने की सलाह देती रही।

प्रत्येक जीवित व्यक्ति, प्राणी, पंछी के लिए जल जीवन का स्रोत है। लेकिन धर्म और जाति प्रथा ने इस जीवन के मूलभूत स्रोतों पर भी पहरे बिठा दिए थे। सार्वजनिक तालाबों तथा कुओं से पानी प्राप्त करने की शूद्रों को आज्ञा नहीं थी। कवि यहाँ पर द्विजों से पूछना चाहता है कि यदि उसे शास्त्रों की इन पुस्तकों के अनुसार उल्लिखित परिस्थितियों से गुजरना पड़ता तो क्या धर्म और शास्त्रों में उसकी नि-ठा इसी प्रकार बनी रहती?

3.3.2 ijkfgrh lLÑfr ij igkj

कवि मनुस्मृति द्वारा प्रयुक्त विधि विधानों को चुनौती देते हुए, एक और प्रश्नावली प्रस्तुत करता है। यदि किसी को भी द्विज का वध कर डालने की खुली आज्ञा होती तो क्या तब भी उसकी नि-ठा अटल रहती? यहां यह वर्णन कर देना अप्रासंगिक नहीं होगा कि शूद्र की हत्या पशु की हत्या से ज्यादा दंडनीय नहीं मानी जाती थी। वध का दण्ड शास्त्रों के विधान के अनुसार वर्ण की उच्चता के अनुसार ही तय किया गया है। उदाहरणतः मनुस्मृति में दर्ज है कि यदि कोई ब्राह्मण किसी क्षत्रिय की हत्या कर देता है तो उसे दण्डस्वरूप एक बैल और एक हजार गायें देनी पड़ेंगी, ब्राह्मण द्वारा यदि वैश्य की हत्या कर दी जाती है तो उसे एक साल तक इसका प्रायश्चित तथा एक बैल के साथ सौ गाये पुरोहित को सौंपने का प्रावधान है। यदि यहां ब्राह्मण किसी शूद्र अछूत की हत्या करता है तो उसको सिर्फ छः मास तक प्रायश्चित करना और मात्र एक बैल और दस गाये देकर छुटकारा हो सकता है। जहां तक ब्राह्मण के वध का प्रश्न है, उसके बारे में एक राजा को भी स्प-ट निर्देश है कि वह उसके वध का विचार भी अपने मन में न लाए क्योंकि कहा गया है कि ब्राह्मण के वध समान इस पृथ्वी पर बड़ा पाप कोई नहीं है।

कोई भी कर सकता है तुम्हारा वध
ले सकता है, तुमसे बेगार
तुम्हारी स्त्री, बहिन और पुत्री के साथ
कर सकता है बलात्कार
जला सकता है घर-बार।
तब, तुम्हारी निष्ठा क्या होती?

कवि आगे यह प्रश्न करता है कि यदि ऐसा हो कि तुम्हारी (द्विज) स्त्री, बहन तथा पुत्री यौन हिंसा का शिकार हो जाए या आपके घर-बाहर जला दिए जाएं तो क्या एक मनोरंजक खेल से ज्यादा कुछ नहीं समझेंगे, आप इसे धर्म के प्रति तब तुम्हारी नि-ठा यथावत रहेगी? यहां यह तथ्य विचार योग्य है कि शूद्र की अस्मिता से खेलना, एक साधारण सी बात मानी जाती है।

जैसे कि यह चर्चा पहले भी हो चुकी है कि शूद्र की हत्या के लिए शास्त्रों के विधानों में सिर्फ सांकेतिक दण्ड का ही प्रावधान है, कवि इन्हीं आधारों पर कविता की इन पंक्तियों में प्रश्न करता है कि यदि द्विज तपस्वियों का वध करने पर इसी प्रकार संकेत मात्र दंड का प्रावधान किया गया होता तो क्या तब भी इन शास्त्रों के विधानों पर आपकी नि-ठा इसी प्रकार बरकरार रहती? यहां यह वर्णन आवश्यक लगता है कि रामायण ग्रंथ के नायक राम ने एक शूद्र तपस्वी का वध महज इसी कारण कर दिया था कि ग्रंथों के आदेशों के अनुसार एक शूद्र तपस्वी नहीं बन सकता। राम ने शास्त्रों के इस विधान को मानते हुए, उस शूद्र तपस्वी शंबूक का सिर अपनी तलवार से काट दिया था।

कविता की अंतिम पंक्तियों में कवि ^राम चरित मानस* ग्रंथ के लेखक तुलसीदास की उन विवादास्पद उक्तियों का वर्णन करता है जो कि शूद्र की अस्मिता को रसातल में उतारने से पीछे नहीं हटतीं। ''पूजिए बिप्र सिलगुन हीना। नाहीं सूद्र गुन ज्ञान प्रबीना।।'' इन पंक्तियों में कहा गया है कि तुलसी दास ने अपने ग्रंथ ^राम चरित मानस* में उद्घो-णा

की है कि ब्राह्मण यदि मूर्ख भी हो, तो भी उसकी पूजा करनी चाहिए, लेकिन इसके विपरीत शूद्र यदि सर्वगुणसपन्न भी हो, तो उसकी पूजा नहीं होगी। तुलसीदास के इन्हीं शब्दों को विपरीत अर्थों में व्यक्त करते हुए कवि यह प्रश्न उठाता है कि यदि तुम्हारे धर्म शास्त्रों में इस प्रकार लिखा होता कि यदि ब्राह्मण तमाम गुणों से युक्त क्यों न हो, तब भी वह पूजा के योग्य नहीं समझा जाना चाहिए। परन्तु शूद्र यदि गुण-विहीन भी हो तो, उसकी पूजा होनी ही चाहिए, क्योंकि शास्त्रों में उसे पूजा के योग्य हस्ती माना गया है। ßकवि प्रश्न उठाता है कि क्या तब भी द्विज का नि-ठा इन धर्म शास्त्रों में पहले की भांति बनी रहती?*

हिंदी दलित-साहित्य में इस प्रकार के सुलगते प्रश्न जो कि धार्मिक नि-ठाओं पर प्रश्न-चिन्ह लगाते हैं, पहली बार सशक्त ढंग से उठाए गए हैं, पाठक को चिंतन की विपुल सामग्री प्रस्तुत करते हैं। धार्मिक-ग्रंथों पर आक्षेप करना, सामान्य तौर पर धृष्टता मानी जाती है, लेकिन कवि यह धृष्टता करता है। भारत के हिंदी-साहित्य के लिए हिंदी दलित-साहित्य की यह एक अमूल्य वैचारिक धरोहर मानी जानी चाहिए। मानववादी-साहित्य व चिंतन की शायद यही मांग है कि समाज का प्रत्येक व्यक्ति समता का अधिकारी है, अतः धर्म-शास्त्रीय अवधारणाओं को भी अब परिवर्तित होने की आवश्यकता है अन्यथा इनकी नि-ठाओं पर लगते प्रश्न अधिक तीव्र होते जाएंगे।

3.4 चुनौती : दासता से मुक्ति की घो ाणा

भारत की पुरातन सांस्कृतिक परंपरा संसार की अन्य पौराणिक परंपराओं से इसलिए भी विलक्षण कही जाती है, क्योंकि इस परंपरा में व्याप्त बहुत सी अवधारणाएं अन्यत्र नहीं मिलतीं। इन पुरातन अवधारणाओं में सबसे विलक्षण अवधारणा यहां की चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था है। इस चातुर्वर्ण्य-सोपानीकृत व्यवस्था के अनुसार समाज को सुचारू रूप में संचालित करने हेतु चार-वर्णों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र आदि में विभक्त कर दिया था और इन सबके कार्यक्षेत्र भी आवंटित कर दिए गए थे। ब्राह्मण को बौद्धिक क्षेत्र, क्षत्रिय को राज्य संचालन, वैश्य को व्यापार तथा कृ-ि तथा शूद्र को सभी प्रकार के निम्न कार्य करने और अन्य तीन वर्णों की सेवा करने के स्प-ट आदेश शास्त्रों में दर्ज मिलते हैं। एक वर्ग को दूसरे वर्ग का कार्य करना पूर्णतया नि-िद्ध था। इस प्रकार की सामाजिक संरचना का विश्व के किसी भाग मे मिलना बहुत दुर्लभ है। इस परंपरा द्वारा सभी वर्गों का आरक्षण तो हो ही गया था, साथ ही उनका सामाजिक दर्जा भी स्वतः तय हो गया था। ब्राह्मण को समाज में सबसे अधिक सम्मानित दर्जा प्राप्त था तथा अन्य वर्ण उसके समकक्ष तो नहीं थे लेकिन समाज में सम्मान के पात्र तो थे ही। शूद्र वर्ग का स्थान सबसे निम्न था। उनका समाज में सम्मान होने का प्रश्न ही नहीं उपजता था। चातुर्वर्ण्य व्यवस्था ने व्यवसायों के आधार पर शूद्र-अछूत को सबसे अधिक तिरस्कार का पात्र घोषित कर दिया था। शूद्र का अस्पृश्य पैदा होने जैसी मान्यता उसके प्रति तिरस्कार की चरमसीमा का ही एक रूप है। इस प्रकार तय की गई सामाजिक-परंपरा शास्त्रों द्वारा पूर्णतया अनुमोदित होने के कारण तीनों वर्ण इसका पालन धर्माज्ञा के रूप में करते हैं। अंत्यज समाज में सबसे निम्न माना गया था। सभी प्रकार की भौतिक आवश्यकताओं से भी वंचित था। उसके लिए शिक्षा के द्वार पूर्णतया बंद थे। शासन प्रबंध में उसका कोई दखल नहीं था, व्यापार उससे कोसों दूर था। संक्षेप में कहा जा सकता है कि उसके इर्द-गिर्द प्रतिबंधों की एक अभेद्य दीवार खड़ी कर दी गई थी जिसको भेदना उसके बूते की बात नहीं थी। इन प्रतिबंधों से छूटने की छटपटाहट का अभाव भी इस वर्ग में देखने को मिलता था। यह छटपटाहट न उपजने के पीछे भी एक दार्शनिक पद्धति कार्य कर रही थी। यह दार्शनिक-पद्धति शूद्र वर्ग को यह समझाने में सफल रही थी कि उसकी दुर्दशा का कारण मानवीय-

आधार नहीं, बल्कि उसके पूर्व जन्मों का ही कुफल है। उसने पूर्व जन्म में किए असंगत कार्यों के फल उसे इस वर्तमान जन्म में भुगतना पड़ रहा है। इस प्रतिरोध की संभावना को ही दार्शनिक अवधारणा ने एक भुक्तभोगी को भाग्यवादी बना दिया, मार्ग बंद कर दिए थे जिसके फलस्वरूप शूद्र अंत्यज अपनी दुर्दशा के प्रति उदासीन बना रहा। लेकिन काल परिवर्तन के साथ इन पौराणिक अवधारणाओं, पर प्रश्न चिह्न उठने लगे। जो कि एक वर्ग को तो सुख-समृद्धि के सोपान तक ले जाती थी तथा दूसरे वर्ग को अंतहीन गहराइयों में धकेलने में सफल हो चुकी थी। इसी प्रकार की झलक प्रस्तुत कविता में देखने को मिलती है। अपने प्रति हुए अन्याय का इस अंत्यज वर्ग के पास पूरा लेखा-जोखा उपलब्ध है। वह उन सभी असमानताओं के प्रति संवेदनशील हो उठा है जिसने उसका मान-सम्मान, तो छीना ही है, उसका शो-ाण करने में सभी सीमाओं को भी लांघा है। आज का दलित संपूर्ण परिवर्तन चाहता है। वह शास्त्रों द्वारा अनुमोदित उन सभी अवधारणाओं पर प्रहार करने से नहीं चूकता जो उसकी अधोगति में सहायक होती रही हैं।

शिक्षा पर लगा दिए प्रतिबंध
आखर पर आज रख दी है तुमने

3.4.1 प्रतिबंधित अर्थव्यवस्था को चुनौती

डॉ. सी.बी.भारती की प्रस्तुत कविता ^चुनौती* आज के जागरूक मानव की विकसित मानस की परिचायक है। वह उन सभी प्रतिबंधों, को चुनौती देता है जो उसकी विकास-प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। आज का दलित यदि दरिद्र है, अशिक्षित है, अन्य सभी क्षेत्रों में पिछड़ा हुआ है तो उसका एक ही कारण है, उसके विकास के सभी स्रोत उससे छीन लिए गए हैं। उसके पास न तो पूँजी है और न ही व्यापार के साधन क्योंकि यह सभी साधन जाति संस्था और धर्म के आदेशों ने छीन लिए हैं। शिक्षा भी उससे छीन ली गई है क्योंकि शिक्षा पर ब्राह्मण वर्ग अपना एकाधिकार चाहता था और उसके द्वारा श्रेष्ठता को ओढ़ लेने का प्रयास भी किया।

वर्णव्यवस्था की प्रथम घो-णा यही है कि प्रत्येक वर्ग जिसको जो कार्य आवंटित किया गया है, उसे ही अपने जीवन-यापन का आधार बनाए। एक ब्राह्मण शिक्षा देने के बल पर अपनी आर्थिकता का प्रबंध करता है, एक क्षत्रिय सैनिक की भूमिका निबाहता हुआ अपना पेट पालता है, एक वैश्य व्यापार या कृ-ि का कार्य करके धनोपार्जन के साधन जुटाता है। स्प-ट है कि इन तीनों वर्गों के पास अपनी जीविका कमाने के कोई न कोई साधन अवश्य मौजूद है। इनको अपने साधन छिन जाने का कोई भय भी नहीं है। धर्माज्ञा का उल्लंघन, मृत्यु का आह्वान था इसलिए कोई अन्य वर्ग इनके साधनों को छीन नहीं सकता। यदि किसी एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग के आरक्षित साधनों को अपनाने का प्रयत्न किया गया तो धर्म इसकी अनुमति नहीं देता है और इसके लिए निर्धारित सजाओं को अमल में लाने में धर्म और राज्य एक साथ थे।

जहां तक दलित-वर्ग का प्रश्न है, इनको ऐसा कोई साधन हीं सौंपा नहीं गया जिसके आधार पर वे अपनी जीविका चला सकते हों। शास्त्रों में शूद्र वर्ग को तीनों वर्गों की सेवा करने का आदेश है। उसके लिए ऐसे कार्य तय किए गए है जिनसे धनोपार्जन करना लगभग असंभव था। उसका जीवन-यापन उच्च वर्ग की दया पर आश्रित है, परिणामस्वरूप दलित वर्ग के पास ऐसा कोई साधन उपलब्ध नहीं होता था जिसके आधार पर वह विकास कर पाता। कविता की इन पक्तियों में ^चुरा लिए हमारे रास्ते विकास के*, एक कटु सत्य छुपा हुआ है। अत्यंजो पर शिक्षा ग्रहण करने का प्रतिबंध होने के कारण हजारों व-र्ों तक शिक्षा से वंचित यह वर्ग आज के समय में सबसे अधिक पिछड़ा है।

मानव सभ्यताओं के इतिहास में यह अनोखा ही उदाहरण है कि किसी व्यक्ति का जन्म से ही अस्पृश्य, अपवित्र, अधिकार विहीन हो जाना। धर्म द्वारा निर्धारित और धर्मशास्त्रों द्वारा निर्देशित चातुर्वर्ण्य व्यवस्था में स्प-ट रूप से जन्मना शूद्र-अतिशूद्र वर्णों के लिए शिक्षा प्रतिबंधित है। मनुस्मृति हिंदू धर्म व्यवस्था का विधि-विधान है इसमें दिए गए निर्देश और कानून भारतीय समाज व्यवस्था को हजारों व-र्ों से नियंत्रित करते आ रहे हैं। इस स्मृति ग्रंथ में स्प-ट रूप से कहा गया है कि जन्मना अस्पृश्य वर्णों को वेदों को पढ़ने, सुनने का अधिकार नहीं है। यदि किसी शूद्र-अतिशूद्र इस कानून का उल्लंघन करते पाया गया तो सजा के तौर पर उसकी जिह्वा को उखाड़ दिया जाए और उसके कान में पिघलता शीसा भर दिया जाय। चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के इस कठोर कानूनों का पालन लगातार तीन हजार व-र्ों से अधिक समय तक बिना विरोध किया जा रहा है। आधुनिक युग तक यह प्रथा निर्बाध रूप से चली आ रही थी। अंग्रेज राज में इस अमानवीय प्रथा के विरोध में समाज सुधारक म.ज्योतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले, न्यायमूर्ति रानडे, महर्षि कर्वे, गोखले आदि के अनथक प्रयासों से सर्वप्रथम महारा-ट्र के पुणे शहर में अछूत और लड़कियों के लिए पहली बार पाठशालाएं खोली गईं। इस क्रांतिकारी कदम द्वारा अछूतों और स्त्रियों पर लगाए गए प्रतिबंध पहली बार टूटे। कवि इस अन्याय को ही मुखर शब्दों में अभिव्यक्ति देकर सदियों पुरानी यथास्थितिवादी प्रवृत्तियों को प्रश्नांकित करते हुए कहते हैं :

'तुमने चुरा लिए हमारे विकास के रास्ते'

3-4-2 ifjorZu dh e[kfjr Loj

ज्ञान से वंचित दलित समूह की सदियों से संचित पीड़ा को कवि ने 'चुनौती' कविता में बेहद संयत लेकिन साथ-ही-साथ आह्वानात्मक रूप में अभिव्यक्त किया है। शिक्षा को दलितों के लिए प्रतिबंधित किए जाने के पीछे यथास्थितिवादी वर्ग का शोषणकारी रवैया नजर आता है। शिक्षा हमें वह दृ-टि प्रदान करती है जिसके द्वारा मानव अपने व्यक्तित्व विकास के साथ ही प्रगति के रास्ते खोज लेता है। सत्य-असत्य को परखने की आलोचनात्मक दृ-टि प्राप्त करता है। प्रतिबंधित व्यवसाय अपनाने में पहल कर सकता है और विकास प्रक्रिया में शामिल होने का प्रयास कर सकता है। लेकिन अछूतों को इस अवसर से दूर रखे जाने के लिए एक ऐसी नीति अपनाई गई जिससे शूद्र-अतिशूद्र बेहतर जीवन के लिए सोचने-विचारने की क्षमता ही हासिल न कर सके।

मनुस्मृतिकार ने अछूतों को ज्ञानग्रहण करने के प्रयास करने पर अतिशय निर्घुण-क्रूर सजा देने का प्रावधान मनुस्मृति में रखा है।

नामजातिग्रहं त्वे-ाामभिद्रोहेण कुर्वतः।
निक्षेप्योऽयोमयः शंकु र्ज्वलन्नास्ये दशांगुलः॥ 8.271

शूद्र यदि विप्र-ब्राह्मण को अपशब्द कहता है तो उसके मुख में तप्त जलती हुई दस अंगुल लम्बी लोहे की छड़ डालनी चाहिए।

अतिशूद्र-अंत्यज (पंचम वर्ण जो हिंदू धर्म की चातुर्वर्ण्य व्यवस्था से बाहर है।) के लिए प्राणदंड देने के प्रावधान का उद्देश्य ही था कि शूद्र अपनी स्थिति से ऊपर उठने के प्रयास नहीं करें, वेद अध्ययन या वेद उच्चारण, वेद को सुनना उसके लिए वर्जित कर दिया गया। इस आदेश का पालन न करने पर मनुस्मृति में दंड का विधान इस प्रकार है।

धर्मोपदेशं दर्पेण विप्राणामस्य कुर्वतः।
तप्तमासेचयेतैलं वक्त्रे श्रोत्रे च पार्थिवः॥ (अध्याय 8.262)

अर्थात् ब्राह्मणों को धर्मोपदेश करने का प्रयास करने वाले शूद्र के कान तथा मुख में राजा बिना संकोच किए गर्म तेल डलवाये। शूद्रों द्वारा शिक्षा ग्रहण न करने के लिए मनु द्वारा दिए आदेश और नि-ेधों के संदर्भ में डॉ. आंबेडकर का मत विचारणीय है *''हिंदू जिसे धर्म कहते हैं, वह सामाजिक आदेशों और नि-ेधों का पुलिंदा है। धर्म का मूल्यांकन सामाजिक मानदंडों से किया जाना चाहिए, जो सामाजिक आचार-विचारों पर आधारित है।*

(बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर, संपूर्ण वाङ्मय, खंड 7, पृ. 370)

कवि की यह अभिव्यक्ति डॉ. आंबेडकर के विचारों का ही रचनात्मक विस्तार है :

तुमने चुरा लिए
हमारे विकास के रास्ते
शिक्षा पर लगा दिए प्रतिबंध
आखर पर आज रख दी है तुमने
हमारी भागीदारी के लिए
योग्यता की शर्त
पर कब तक फेंकोगे तुम
अपना यह मकड़जाल हम पर?

3.5 श्रे ठता का दंभ तोड़ती कविता

किसी भी रचनात्मक कृति का प्रथम उद्देश्य होता है कि वह साधारण जनजीवन के आंतरिक संसार के साथ पाठकों में संवेदना जगाए और सामाजिक सत्य को प्रकट करे जिसके द्वारा पाठक और चिंतक समाज के संबंध में नवीन ढंग से चिंतन-मनन करने लगे। कवि देश के करोड़ों शोि-त, पीड़ित लोगों के पक्ष में यथास्थितिवादी प्रवृत्तियों को चुनौती देता है। वह अब प्रतिबंधों के स्थान पर समाज के प्रत्येक क्षेत्र में भागीदारी चाहता है। वह सामाजिक व्यवस्था के इस अतीतोन्मुखी, क्रूर, नि-ठुर स्वरूप को भंग कर देना चाहता है। वह देश के विकास में हिस्सेदार बनने के लिए उसकी संरचनात्मक गलतियों को ठीक करना चाहता है। कवि दलित, शोि-त वर्ग को आश्वासन देते हुआ नये युग का सूत्रपात करना चाहता है। वह सभी पौराणिक परिस्थितियों को परिवर्तित करने का आह्वान करता हुआ घो-णा करता है कि अब दलित-शोि-त वर्ग डॉ. आंबेडकर की वैचारिकी को आत्मसात करके चेतना का वाहक बन गया है। उसने अपना रास्ता खोज लिया है, वह अतीतोन्मुखी परंपराओं को ध्वस्त करता हुआ अपने भवि-य का स्वयं निर्धारण करने वाला है। कवि के यह शब्द दलित वर्ग के भीतर नई आशा का संचार करते हैं। वह शो-णकर्ता को भी चेतावनी देना नहीं भूलता। वह उसके दर्द को बहुत पीछे छोड़ देने की घो-णा करके उस कुंठित हीनभावना से मुक्त होना चाहता है जो उस पर पुरोहिती सभ्यता ने थोपी थी। डॉ. सी.बी. भारती की कविता दलित-वर्ग के भीतर समायी कुंठा तथा हीनभावना को समाप्त कर देना चाहती है। उच्च वर्ग के भीतर छिपी असंवेदनशीलता से कवि भलीभांति अवगत दिखाई पड़ता है, इसी कारण वह यह घो-णा करने पर बाध्य है कि यह परिवर्तन की लहर बहुत शीघ्र ही मठाधिशों के उन्मत धर्म-मठों को धराशायी कर देगी जो सदियों से उनका शो-ण करते रहे हैं।

घबराओं नहीं
समय आ रहा है
जब हम भी बढ़ेंगे तुमसे
दौड़ने की शर्त
जीतेंगे बाजी

तोड़ेंगे तुम्हारा दर्प
सुनो परिवर्तन की सुगबुगाहट
बदलती हवा का रूख
पहचानो पहचानो पहचानो!

क्योंकि दलित-साहित्य की यह अवधारणा सर्वमान्य है कि यह नकार तथा प्रतिरोध का साहित्य है, इसलिए वह सभी पौराणिक परंपराओं, मान्यताओं पर आघात करने से नहीं चूकता। उसकी वाणी में क्रोध और धिक्क्कार है जो कि उस पर किए अत्याचारों, शो-ण तथा दलन से उपजी है। वह परिवर्तन की हुंकार भरता है, वह याचना तथा गिड़गिड़ाहट के स्वर अब भूलना चाहता है। हजारों व-र्षों का इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि इसी याचना तथा गिड़गिड़ाहट ने दलित वर्ग को एक निरीह याचक के रूप में प्रतिबिंबित कर दिया है। अब यह वर्ग अपनी सार्वभौमिकता तथा विकास के रास्ते खुद ब खुद चुनना चाहता है कविता का यह विद्रोही स्वर उसकी भाव-भंगिमा को प्रदर्शित करता है। यहां इस तथ्य को हमें नहीं भूलना चाहिए कि इस कविता के मुख्य स्वर में व्याप्त आक्रोश और आक्रमण के स्वर इस समाज में समता, बंधुत्व और न्याय की अपेक्षा रखता है।

दलित कविता का विद्रोह व्यक्ति स्वाधीनता की प्रखर चेतना को मुखरित करता है। जिस ब्राह्मणवादी परंपरा ने सदियों तक इनकी स्वतंत्रता छीन कर उन्हें दास बनाए रखा था, उसे समूल न-ट करने का संकल्प उनके शब्दों में प्रकट हो रहा है। धर्मग्रंथों के आडंबर और मिथ्या वल्गना को सरेआम करता है। दलित अस्मिता का यह संघर्-ा एक व्यक्ति का नहीं अपितु सारे समूह का है। समाजसापेक्ष स्वर जाति संस्था को तोड़ने का और समतामूलक समाज निर्माण की कवि की प्रतिबद्धता को दर्शाता है।

3.6 दलित सौंदर्यबोध की जीवनवादी दृ टि

दलित रचनाकारों ने दलित जीवन की उन अनकहीं सच्चाई को रचनात्मक अभिव्यक्ति देकर साहित्य के परंपरागत मानदंडों को बदलने का आह्वान किया है। उनके जीवन संदर्भों की जटिल बुनावट को साहित्य की वि-नयवस्तु बनने की यह जनतांत्रिक प्रक्रिया है। जिससे साहित्य का फलक अधिक विस्तारित हुआ है। हाशिए का यह वंचित वर्ग सदियों की दासता को उतार कर फेंक देना चाहता है। हजारों व-र्षों से मूक समाज की इस मेधाशक्ति ने रचनात्मक अभिव्यक्ति के विशे-ा क्षेत्र में दलित जीवन संदर्भों सरोकारों, अपमाननाओं व्यथा-वेदनाओं को मानवीय संवेदनाओं से जोड़कर को ऐतिहासिक दस्तावेजों के रूप में प्रस्तुत किया है। तथाकथित सवर्ण वर्ग के वर्चस्व को अभिव्यक्त करने वाले हिंदी साहित्य में वंचितों की अनुपस्थिति को लेकर दलित रचनाकार क्षोभित है, घृणा से उपजी अवहेलना न केवल सामाजिक-आर्थिक राजनीतिक क्षेत्र में है, बल्कि सांस्कृतिक क्षेत्र में भी वह बरकरार है। वह आभिजात्यता के इस दोगलेपन से व्यथित है।

दलित कविता व्यक्ति विशे-ा के माध्यम से समूह मन की छटपटाहट को अभिव्यक्त करती हैं। इसलिए दलित कविता आभिजात्य संस्कृति की शैली, छंद और काव्यरूपों का विरोध करती है। कविता में जो लोकजीवन, दलित संघर्-ा, मुक्ति की आस, सामाजिक परिवर्तन के प्रति छटपटाहट है वह पुरातन हो चुके काव्यरूपों में अभिव्यक्ति नहीं पा सकते। सत्ता सम्पन्नों के विरोध में सत्ताहीनों के संघर्-ा का यह 'एल्गार' है। अतः इसके विस्तार के लिए लोकजीवन से ही प्रतीक, प्रतिमान, बिम्ब और मुहावरों को लेकर दलित जीवन की त्रासदी को उजागर किया जा सकता है। भा-ा का संस्कारित बनावटी स्वरूप गुलामी की पीड़ा, जाति के दंश, भूख-गरीबी की मार को अभिव्यक्त करने में अक्षम है। श्रम की महत्ता को नकारने वाला आभिजात्य साहित्य सत्ता का ही हिस्सा होकर हाशिए के समूहों के प्रति निर्मम हो जाता है। दलित साहित्य इसी असत्य, कल्पनाविलास को नकारता है। हरपाल

सिंह 'अरूऩ' का यह कथन कि "जिस प्रकार कबीर का साहित्य भीतर के असंतो-न, उद्विग्नता और बेचैनी को व्यक्त करता है, उसी प्रकार वाणी देता है। उसका अपना सौन्दर्य है।" (दलित साहित्य की भूमिका, पृ.48)

'तब, तुम्हारी नि-ठा क्या होती' कविता ब्राह्मणवाद की उस घृणित प्रवृत्ति पर कठोरतम शब्दों में आघात करती है, जिस ने दलितों के विद्याध्ययन के अधिकार को छीन लिया था। इसकी तह तक पहुँचने के सारे मार्ग भाग्यवाद के तर्कहीन अंधविश्वास के द्वारा रोक दिए गए थे। आज कवि विद्याध्ययन से प्राप्त मेधाशक्ति के कारण तार्किक प्रश्न करता है कि:

यदि यह विधान लागू हो जाता
कि तुम अस्पृश्य हो
तुम्हारी छाया भी अमंगल है,
हमारे शरीर, वायुमंडल और धरा के लिये।
इसलिये तुम्हें गले में लटका कर हांडी
और कमर में बाँधकर झाड़ू
सड़कों पर चलने की राजाज्ञा हो,
तुम्हारा वर्जित हो मन्दिरों में प्रवेश
सार्वजनिक कुओं, तालाबों से लेना पानी।
तब, तुम्हारी नि-ठा क्या होती?

"तब, तुम्हारी नि-ठा क्या होती? जैसे अभिधा में कहे गए शब्द प्रयोग ब्राह्मणवादी मूल्यों के प्रति विरोधात्मक प्रतिक्रिया स्वरूप आते हैं। 'सुनो परिवर्तन की सुगबुगाहट', 'बदलती हवा का रूख,' 'समय आ रहा है' जैसे सामान्य से लगने वाले शब्द, मुहावरे दलित चेतना के गंभीर संदर्भ को अभिव्यक्त करते हैं। विमल थोरात का मत यहाँ विचारणीय है" चेतना से उद्भूत विचारों और सर्जना के समर्पित भाव वे कविता में विचारधारा, सरोकार और हाशिए के सौंदर्यशास्त्र की निर्मित करते हैं। ('नए क्षितिजों की ओर' भूमिका से साभार।)

3.7 सारांश

विरोध की संभावनाओं को देखकर इसे दार्शनिक आवरण से ढका गया जिसमें इस व्यवस्था को ईश्वर निर्मित, अपरिवर्तनीय होने तथा जन्म, कर्मफल और भाग्यवाद से जोड़कर धर्मसम्मत बना देने में विप्रों को सफलता मिली और धर्म के भय से अत्यंत शोनित अपनी स्थिति के प्रति उदासीन बना रहा। वर्ण जाति व्यवस्था की अपरिवर्तनीयता को बनाए रखने के लिए अनेकानेक धर्मग्रंथों में इस बात को बार-बार दोहराया गया जिसमें अछूतों के मन में विद्रोह की भावना न जग सके। कालांतर में लोकायतों, चार्वाकों ने वर्ण-जातिव्यवस्था के विरोध में लंबा संघर्ऩ किया स्वाधीनता में समता प्राप्ति की चेतना बुद्ध के दर्शन में सबसे प्रबल रूप में अभिव्यक्त हुई। संपूर्ण बुद्धचिंतन का केन्द्र मानव की स्वतंत्रता रहा है। वैदिक परंपरा के विरोध का यह सबसे लंबा वैचारिक संघर्ष रहा है।

'चुनौती' और 'तब तुम्हारी नि-ठा क्या होती' कविताएँ शो-ण की परंपराओं को समूल न-ट करने की विचारधारात्मक कार्रवाई की संवदेनशील अभिव्यक्ति हैं। ये दोनों ही कविताएँ दलित हितों को आहत करने वाली परंपराओं और व्यवहार पर प्रश्न उठाती हैं। छुआछूत, जाति प्रथा, गैर-बराबरी को प्रश्रय देने वाली विचारधारा के विरोध में दलित साहित्य ने मोर्चा खोला है। अभी तक मूक समाज में अपने तार्किक प्रश्नों के मार्फत सदियों से पोनित, संवार्धित सनातनी धार्मिक व्यवस्था की संरचना बदलना चाहता है। वैदिक परंपरा को यह

समतावादी विचार चुनौती देता है, वह भारतीय इतिहास और संस्कृति का सूक्ष्म मूल्यांकन करके उसके अमानवीयता पर प्रहार करता है। धर्म द्वारा प्रतिबंधित क्षेत्रों में प्रवेश करके वह दर्शाना चाहता है कि योग्यता या कौशल जन्माधारित नहीं बल्कि अवसर मिलने पर इसे हर इंसान में अर्जित करने की क्षमता होती है। अतः जन्मना श्रेष्ठ और निम्न के दर्जे को तय करने वाली चातुर्वर्ण्य व्यवस्था की बुनियादी संकल्पना को यह वैज्ञानिक तर्क धराशायी कर देता है।

कवि भेदक शब्दों में ऐस अनगिनत प्रश्न इस सत्ता और सत्ताधारियों के समक्ष रखता जाता है, जिनसे शो-ण संस्थाओं के नियामक अनुत्तरित हो जाते हैं। मालिक और दास, जमींदार और श्रमिक जैसी जाति-वर्गाधारित संरचना पर ही यह कविता प्रश्नचिह्न लगाती है। जन्म के आधार पर वर्ग, शूद्र और अतिशूद्रों को संपूर्ण अर्थ, संस्कृति, राजनीति व धर्मनीति से नि-कासित, व बहि-कृत करने वाली नृशंस विचारधारा के विरुद्ध संघ-र्रत वर्गों के मनोभावों की ही अभिव्यक्ति इन दोनों कविताओं में आपने देखी है। जिसके प्रतिबद्धता ऐसे समाज के निर्माण के साथ है जो बहुजनों के हित और सुख में है।

बुद्ध का वचन 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' को ये दोनों कविताएं चरित्रार्थ करती है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY